वेदांजली, *An International Peer Reviewed Refereed Research Journal*
वर्ष–८, अंक–१५, भाग–३, जनवरी–जून २०२१। ISSN: 2349-364X

शास्त्रीय संगीत और लोक संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध एवं अन्तर

• **डॉ० निर्मला जोशी** व **जगमोहन परगाँई**

संगीत का सर्वप्रथम संदर्भ सामवेद से प्राप्त होता है। साम गान से संगीत की उत्त्पत्ति मानी जाती है। स्वर एवं लय संगीत के आधारभूत तत्व हैं। स्वर की उत्त्पत्ति ध्वनि तथा नाद से हुई है। संगीतोपयोगी नाद ही स्वर कहलाता है। संगीत मानवीय लय एवं तालबद्ध अभिव्यक्ति है।

संगीत न केवल विद्या है वरन एक महाशक्ति है। मन मस्तिष्क की परितृप्ति के अनेकानेक दृश्य–अदृश्य साधन है पर भावनाओं की तृप्ति लोक संगीत एवं शास्त्रीस संगीत के माध्यम से होती है। संगीत के आधारभूत सात स्वर **सा, रे, ग, म, प, ध, नि** हैं। स्वरों का आरोह–अवरोह इन्हीं चक्रों के क्रम में होता है। सामान्यतः हृदय, कंठ तथा मूर्द्धन्य से नाद की उत्त्पत्ति होती है, इसी कारण संगीत को हृदय की वाणी के रूप में जाना जाता है। संगीत आदिकाल से ही मनुष्य के साथ जुड़ा हुआ है तथा इसकी स्वस्थ परम्परा ही मानवी क्षमताओं के विकास में सहायक है। एक मत के अनुसार नारद जी की वर्षों की योग साधना के पश्चात् नारद को संगीत की शिक्षा शिवजी से प्राप्त हुई। ''शिव प्रदोष'' में भी इसी धारणा का समर्थन है। इस संगीत को भरत ने महादेव के सम्मुख प्रस्तुत किया जो कि मुक्तिदायक था, मार्गी संगीत कहलाया। इसके समानान्तर लोक–रचनार्थ जिस संगीत को पृथ्वी पर प्रयोग किया गया वह देशी संगीत कहलाया। वेदों के पश्चात् लिखे गये विभिन्न पुराणों में रामायण एवं महाभारत काल में भी संगीत का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। देशी संगीत से वर्तमान में प्रचलित शास्त्रीय संगीत तथा लोक संगीत की दो विधाएँ प्राप्त हुई।

शास्त्रीय संगीत – संगीत सामाजिक एवं ऐतिहासिक दृष्टिकोण से सदैव महत्वपूर्ण रहा है। शास्त्रीय संगीत का प्रयोग वर्ग विशेष द्वारा एवं लोक संगीत जन सामान्य में प्रचलित रहा। शास्त्रीय संगीत में भावाभिव्यक्ति संगीत के शास्त्र के आधार पर स्वर एवं लय के माध्यम से की जाती है। साधारणतायाः शास्त्रीय संगीत उसे कहते हैं जो शास्त्र नियमों के अनुसार प्रस्तुत किया जाए। शास्त्रीय संगीत में स्वर एवं लय का प्रयोग शास्त्र के आधार पर किया जाता है। शास्त्रीय संगीत मार्गी संगीत की श्रेणी में आता है। संगीत के अनेक मूर्धन्य शास्त्रकारों अथवा विद्वानों के मतानुसार लोक संगीत, शास्त्रीय संगीत का बीज रूप है। शास्त्रीय संगीत मनुष्य द्वारा निर्मित सिद्धान्तों की बंदिश में रहता है। शास्त्रीय संगीत (गायन, वादन व नृत्य) शास्त्र पर आधारित है। जिस देश अथवा जाति का संवेदनशील मानव जिस समय अपने हृदय के भावों की अभिव्यक्ति करने के लिए उन्मुख हुआ, उसी अवसर पर स्वयं स्वर–लय उसके मुख से उत्पन्न हुए, उन्हीं स्वर, गीत और लय को नियमबद्ध कर उनका जो शास्त्रीय विधान किया गया वही संगीत शास्त्रीय संगीत है। शास्त्रीय संगीत चमत्कार प्रधान होता है। शास्त्रीय संगीत का जन्म मुख्यतः हृदय एवं बुद्धि के समन्वयात्मक प्रयत्नों से होता है। राग की परिधि में स्वर तथा उसका विस्तार शास्त्रीय संगीत का आधार है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत की रचना या उसकी विशुद्धता तथा विविधता संगीत घरानों की सुघड़ परम्परा की ओर संकेत करती है। यह मनुष्य द्वारा निर्मित सिद्धान्तों की बंदिश में रहता है। शास्त्रीय संगीत में अपेक्षाकृत क्लिष्टता रहती है। इसको शास्त्र के नियमों में बँधा रहना होता है। इसमें स्वर – लय, ताल आदि को समझने के लिए अधिक परिश्रम की आवश्यकता होती है। संगीत के तीन विधाएं गायन, वादन, एवं नृत्य हैं जिसमें शास्त्रीय संगीत की शैली का प्रयोग किया जाता है।

गायन में शास्त्रीय संगीत – गायन संगीत की परम्परा में जाति गायन एवं राग गायन की परम्परा प्राप्त होती है। राग को गायन के माध्यम से प्रस्तुत करना शास्त्रीय गायन कहलाता है। शास्त्रीय गायन शैली के अन्तर्गत प्रबंध गायन,

• **असि० प्रो० संगीत विभाग, एम०बी०पी०जी० कॉलेज, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड**

व

• **संगीत, शोध छात्र, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, नैनीताल, उत्तराखण्ड**

ध्रुपद–धमार गायन शैली और ख्याल गायन शैली आती हैं। वर्तमान में ध्रुपद–धमार गायन शैली एवं ख्याल शैली ही प्रचलन में है, प्राचीन प्रबंध गायन शैली लुप्त हो चुकी है। ध्रुपद– धमार गायन शैली में पदों को पखावज में बजने वाली ताल जैसे– चारताल, सूलताल, तीव्रा, धमार आदि में निबद्ध कर राग की अवतारणा की जाती है। ध्रुपद– धमार गायन शैली में गायन चार चरण– स्थाई, अन्तरा, संचारी, आभोग में किया जाता है। इस गायन शैली में स्वर–शब्दों के साथ लय एवं लयकारियों के प्रयोग से गायन चमत्कारिक एवं आकर्षक बनता है। शास्त्रीय गायन की अन्य शैली ख्याल गायन में विलम्बित, मध्य एवं द्रुतलय की रचनाओं के माध्यम से राग गायन प्रस्तुत किया जाता है। ख्याल गायन में आलाप, बोल आलाप, तान एवं बोलतान का प्रयोग आवश्यक रूप से किया जाता है। मध्यलय की रचना जिसको साधारण भाषा में छोटा ख्याल कहा जाता है, इसमें बोलतान एवं द्रुतताल की तानों का प्रयोग कर रचना को खूबसूरती के साथ प्रस्तुत किया जाता है।

गायन की उपशास्त्रीय विधा में ठुमरी एवं दादरा आते हैं। उपशास्त्रीय संगीत में रागों के कठोर नियमों का पालन शास्त्रीय संगीत की भाँति नहीं होता है। बोल आलाप के माध्यम से रचना के वांछित भावों की अभिव्यक्ति की जाती है। उपशास्त्रीय संगीत पूर्णतः भाव प्रधान है।

शास्त्रीय वादन – वाद्यों की चार श्रेणी मानी गई हैं– तंत्रवाद्य, सुषिरवाद्य, अवनद्य वाद्य व घन वाद्य। तंत्र वाद्य वीणा एवं उसके प्रकारों पर ध्रुपद गायन शैली का ही प्रयोग किया जाता है। शास्त्रीय संगीत की मान्यता के अनुसार तंत्र वाद्य के वादन के आरम्भ में गतकारी बाज के अन्तर्गत आलाप, जोड़ एवं जोड़ झाला एवं उसके पश्चात मसीतखानी गत, रजाखानी गत लय के अनुसार तोड़े अथवा तान अनिबद्ध रूप में प्रस्तुत किया जाता है। रजाखानी गत प्रस्तुत करने के पश्चात द्रुतलय में बाज एवं चिकारी के तार की सहायता से द्रुत गति में झाला बजाकर वादन का समापन किया जाता है। तंत्र वाद्य के अन्तर्गत आने वाले गज वाद्यों पर गतकारी का प्रयोग तथा ख्याल गायन शैली दोनों का ही प्रयोग किया जाता है। सुषिर वाद्य में मुख्य रूप से गायन शैली का ही प्रयोग होता है। शास्त्रीय संगीत में गायन तथा वादन की संगति पखावज अथवा तबले पर की जाती है जिसमें पखावज अथवा तबला वादक शास्त्रीय गायन एवं वादन के कार्यक्रम को सफल बनाने हेतु गायक अथवा वादक की इच्छानुसार वादन करता है। तबला अथवा पखावज में संगीत के अतिरिक्त एकल या स्वतंत्र वादन भी शास्त्रीय संगीत की मान्यता के अन्तर्गत आता है।

शास्त्रीय नृत्य – नृत्य में उत्तर भारत का नृत्य ''कत्थक'' नृत्य शास्त्रीय नृत्य की श्रेणी में आता है जिसमें पदचाप एवं आंगिक अभिनय को नृत्य की रचनाओं के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। दक्षिण भारत का भरतनाट्यम, कथकली एवं मोहिनीअट्टम, उड़ीसा क्षेत्र का ओडिसी, उत्तर पूर्व क्षेत्र मणिपुर का मणिपुरी नृत्य आदि शास्त्रीय की श्रेणी में आते हैं। इन नृत्यों की अपनी अलग–अलग विशेषताएँ होती है।

लोक संगीत – लोक संगीत वह संगीत है जिसने जनमानस में स्वतः उन्मुक्त तथा स्वच्छन्द वातावरण में जन्म लिया। यह जनसाधारण की आन्तरिक भावनाओं का प्रतीक है। यह देश की संस्कृति का जीता–जागता उदाहरण है। किसी भी देश की सांस्कृतिक उन्नति का पता इस देश के लोक संगीत को देखकर चलता है। भारतवर्ष में लोक संगीत का प्रचार प्राचीन समय से ही प्राप्त होता है। वैदिक काल में विवाह जन्म के अनेक शुभ अवसरों पर गाया जाने वाला संगीत, लोक संगीत ही था। यह हर काल में रहा और निरन्तर उन्नत होता गया।

प्राचीन काल से ही मनुष्य अपने मन के भावों को गाकर अथवा नाचकर अभिव्यक्त करता आया है। वह अपने सुख–दुख तथा जीवन की अनेक घटनाओं को संगीत के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। मनुष्य जब अपने हृदय के भावों को व्यक्त करने के लिए संगीत का सहारा लेता है तो वह लोक संगीत कहलाता है। लोक संगीत को सहज संगीत भी कहा जाता है। इसे सीखने के लिए किसी विशेष शिक्षा–दीक्षा अभ्यास या साधना की आवश्यकता नहीं होती है। आनन्द, उल्लास, विषाद के अतिरिक्त में जनसाधारण जब स्वर एंव लय के माध्यम से भावों की अभिव्यक्ति करता है तो वह लोक संगीत कहलाता है। लोक संगीत की भाषा सरल, धुनें सहज तथा हृदय को छूने वाली होती है। इस संगीत को पढा़ नहीं जा सकता है वरन पीढ़ी दर पीढी श्रुत परम्परा द्वारा ही सुरक्षित किया गया है।

लोक संगीत क्षेत्र विशेष की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं भौगोलिक परिस्थितियों का दर्शन कराता है। यह समाज के विभिन्न वर्गों के दिन प्रतिदिन की गतिविधियों का, उनके हर्ष और विषाद का चित्रण करता है। लोक संगीत

में सामाजिक स्थिति एवं धार्मिक मान्यताएँ विशेष रूप से परिलक्षित होती है। इसमें गायन, वादन एवं नृत्य तीनों का समावेश होता है। लोक संगीत में प्रचलित व लोक द्वारा निर्मित गीत ही लोक संगीत है। दैनिक क्रिया, व्यापार, हल चलाना, चक्की पीसना, शादी ब्याह, उत्सव, त्यौहार, वर्षा, बसंत तथा ऋृतु आदि लोक गीतों के उद्‌गत स्थल हैं।

लोक संगीत मुख्य रूप से ग्रामीण परिवेश का संगीत है और इसका विकास भी ग्रामीण क्षेत्रों में ही होता है। यद्यपि आजकल टेलीविजन के माध्यम सं विभिन्न प्रकार का संगीत भी ग्रामीण क्षेत्र में पहुँच चुका है परन्तु अभी भी ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ पर आधुनिक तकनीकि का प्रचार नहीं हुआ है। इन्हीं क्षेत्रों में पारम्परिक लोक संगीत विशुद्ध रूप में विद्यमान है। लोक संगीत में स्थानीय संस्कृति एवं मान्यताओं की झलक पाई जाती है। इसी कारण प्रत्येक क्षेत्र का अपना लोक संगीत होता है। लोक संगीत मेले, उत्सव, विवाह, मांगलिक कार्य आदि का मुख्य अंग होता है। कोई भी धार्मिक अनुष्ठान भी लोक संगीत के बिना सम्पन्न नहीं होता है। लोक संगीत में लोक गीत गायन एवं लोक वाद्य वादन, लोक नृत्य स्वतंत्र एवं सम्मिलित रूप से होता है। लोक कवियों द्वारा स्थानीय परिवेश जैसे– प्रकृति वर्णन, स्थानीय घटनाएँ तथा स्थानीय समस्याओं पर रचना कर तथा इनको संगीत बद्ध कर लोक गायन प्रस्तुत करते हैं। लोक कवि ही लोक गायक भी होते हैं। इस परम्परा में लोक गीत समयानुसार लोक कवियों द्वारा नये लोक गीतों का निर्माण होता रहता है जिसको यह मेले एवं उत्सवों में प्रस्तुत करते हैं। प्रत्येक क्षेत्र का एक पारस्पारिक लोक संगीत होता है जिसको परिवतर्तित नहीं किया जाता वरन पुरानी परम्पराओं के आधार पर ही प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार के पारस्परिक लोक संगीत के अन्तर्गत नृत्य, संस्कार गीत, देवी–देवताओं के गीत, विरह गीत तथा लोक वाद्यों का वादन आता है। लोक संगीत मुख्यतः लय, ताल पर आधारित होता है परन्तु फिर भी संस्कार गीत एवं विरह गीत बिना किसी लय–ताल वाद्य के प्रस्तुत किये जाते हैं। नृत्य, गीत के साथ तथा स्वतंत्र रूप से भी लोक शैली में पाया जाता है। लोक अवनद्य वाद्यों को प्रयोग वैसे तो लोग गीत एवं नृत्य की संगति में ही किया जाता है परन्तु हिमालय क्षेत्र में लोक अवनद्य वाद्य ढोल का प्रयोग स्वतंत्र वादन के रूप में भी पाया जाता है। इस प्रकार लोक संगीत, लोक गीत, लोक नृत्य एवं लोक वाद्यों के वादन के रूप में रहता है।

शास्त्रीय संगीत तथा लोक संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध – शास्त्रीय संगीत और लोक संगीत एक वृक्ष की दो शाखाएँ हैं। संगीत के इन दोनों प्रकारों की विकास दिशाएँ स्वतंत्र है तथा दोनों ही प्रौढ़ संगीत शैलियों के दो विकसित स्वरूप हैं। लोक संगीत शास्त्रीय संगीत का अविकसित रूप नहीं है और न शास्त्रीय संगीत ही लोक संगीत का विकसित रूप है। दोनों ही स्वरूप एक साथ अंकुरित एवं विकसित होते हैं और दोनों ही एक दूसरे से प्रेरणा प्राप्त करते रहते हैं। साधारण रूप में लोक–संगीत, संगीत का लोक पक्ष है एवं शास्त्रीय संगीत उसका वह पक्ष है जो व्यक्ति विशेष की प्रतिभा के अनुसार विशिष्ट शास्त्र में बँध गया है। इसमें एक विशेष बात यह है कि लोक संगीत कभी भी शास्त्रीय पक्ष को प्राप्त नहीं करता और न शास्त्रीय संगीत ही लोक पक्ष को प्राप्त होता है। संगीत के यह दोनों पक्ष अनादिकाल से एक दूसरे के समकक्ष चलते आये हैं और एक दूसरे से प्रेरणा लेते रहे हैं। वैदिक कालीन संगीत को सुनने से यह प्रतीत हो सकता है कि उस समय लोक संगीत तथा शास्त्रीय संगीत में कोई भेद नहीं था।

लोक संगीत भी मनुष्य की भावनात्मक अभिव्यक्ति के रूप में जनमानस में आता गया तथा उसके सतत् प्रयोग से निर्दिष्ट एवं सुव्यवस्थित स्वर धारा के रूप में प्रस्फुटित हुआ। जानकारों ने इन स्वर रचनाओं का विश्लेषण किया। अनेक गीतों के परीक्षण से उन्हें स्वाभाविक स्वर रचनाओं के ऐसे अनके सार्थक चयनों का पता लगा जो विशिष्ट भावनात्मक स्थितियों में मुनष्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के आधार पर जुड़ते मिलते हैं। उन्हें विशेष रागों की संज्ञा दी गई और यह निश्चित किया गया कि अलग–अलग स्वरों के चयन से एक विशेष प्रकार की धुन का जन्म होता है। इन्हीं धुनों का नामकरण किया गया और उनका एक विशेष शास्त्र धीरे–धीरे विकसित हुआ। लोक गीतों के स्वर चयन में शास्त्रोक्त राग निर्धारण न पहले ही था और न आज ही है। उनमें केवल रागों का आभास मात्र रहता है। उसी आभास के आधार पर शास्त्रीय संगीत का विस्तार पक्ष सक्रिय होता है। जिस तरह शास्त्रीय संगीत का प्रेरक लोक संगीत है उसी तरह लोक संगीत का प्रेरक शास्त्रीय संगीत है। शास्त्रीय संगीत यदि लोक संगीत की ओर अभिमुख होता है तो उसकी प्रियता बढ़ती है। उसका भाव पक्ष रसमय एवं सजीव बनता है। यह प्रवृत्ति आज सर्वत्र देखने को मिलती है। विशेषकर राजस्थान में, जहाँ लोक गीत गाने वाली अनके व्यवसायिक जातियाँ बन गई हैं जो उन्हें शास्त्रीय संगीत की

ओर खींचती हैं। शास्त्रीय संगीत संयोग से कुछ अत्यन्त आकर्षक और मनोरम लोक शैलियों की उपलब्धि भी हुई है। उसमें राजस्थान की माँड़, महाराष्ट्र के पवाड़े तथा बंगाल के जात्रा गीत सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं।

अतः शास्त्रीय संगीत का बहुत कुछ आधार लोक संगीत है। शास्त्रीय संगीत इस प्रकार लोक गीत से प्रेरणा ग्रहण कर लेता है।

शास्त्रीय संगीत एवं लोक संगीत में अन्तर – शास्त्रीय संगीत एवं लोक संगीत एक दूसरे के साथ जुड़े हैं। दोनों में समय के अनुसार परिवर्तन होता रहता है फिर भी दोनों को रूप एक जैसा कभी नहीं होता है, दोनों में कुछ अन्तर पाये जाते हैं। लोक संगीत स्वतंत्र होता है इसमें किसी प्रकार के नियमों का बंधन नहीं होता है। जैसे शास्त्रीय संगीत में शास्त्र के नियमों का पालन करते हुए उसके वादी, सम्वादी लय आदि नियमों में बँधे रहना पड़ता है। परन्तु लोक संगीत में इस तरह के कोई नियमों का पालन नहीं करता होता है। शास्त्रीय संगीत बहुत परिश्रम से सीखा जाता है इसमें अत्यधिक अभ्यास की आवश्यकता होती है किन्तु लोक संगीत व्यक्ति सुन कर ही आत्मसात कर लेता है। जहाँ चार व्यक्ति मिलते हैं लोक संगीत का अभिव्यक्ति स्वतः ही होने लगती है। इसमें किसी प्रकार के परिश्रम की आवश्यकता नहीं होती है ये भाव के द्वारा स्वतः ही आने लगते हैं। वास्तव में इन दोनों संगीत की विधाएँ स्वर एवं लय के आधार पर ही खड़े रहती हैं। शास्त्रीय संगीत में स्वर की प्रधानता रहती है तो लोक संगीत में लय एवं ताल प्रधान रहते हैं। शास्त्रीय संगीत में राग विशुद्ध रूप से प्रस्तुत किये जाते हैं परन्तु लोक संगीत में राग शुद्धि का महत्व नहीं होता है। शास्त्रीय संगीत महान विद्वान संगीतकारों की विरासत है जिसे उन कलाकारों ने अपने अथक परिश्रम से संजोकर रखा है। यह घरानों के रूप में विकसित एवं प्रचरित होता है। किन्तु लोक संगीत आज भी सामूहिक रूप में अपनी–अपनी चौपालों, खेत खलियानों तथा गली–गलियारो में विद्यमान है। शास्त्रीय संगीत को 'मार्गी' संगीत एवं लोक संगीत को 'देशी' संगीत भी कहा जाता है। क्योंकि 'मार्गी' संगीत जनसाधारण का संगीत नहीं है, यह कठिन होता है और सभी लोग इसे आसानी से ग्रहण नहीं कर सकते। यह मोक्ष प्राप्ति का संगीत है। इसके अतिरिक्त जनरूचि के अनुसार जिस हृदय रंजक संगीत की अभिव्यक्ति हुई वह देशी संगीत के विकास के पीछे लोक संगीत विद्यमान रहा।

शास्त्रीय संगीत का साहित्यिक पक्ष लोक–संगीत की अपेक्षा कम है। ध्रुपद आदि संस्कृत, हिन्दी या एक दो अन्य भाषाओं में प्राप्त होते हैं परन्तु लोक संगीत के गीतों का साहित्य क्षेत्र विशेष के अनुसार अनेक बोलियों व भाषाओं में मिलता है। शास्त्रीय संगीत को गाते बजाते समय यह ध्यान रखना पड़ता है कि राग किस समय गाया बजाया जाए सुबह, दिन, शाम, रात अलग–अलग प्रहर के लिए अलग अलग राग है। लेकिन लोक संगीत में गायक को किसी प्रकार बंधन नहीं रहता। जब चाहो अपने गीतों को प्रस्तुत कर सकते हैं। शास्त्रीय संगीत के लिए मुख्य रूप से तानपुरा, तबला, हारमोनियम आदि की आवश्यकता होती है परन्तु लोक संगीत वाद्य उपलब्ध ना होने पर भी गाया जा सकता है। लोक गीत रचयिताओं के पास शब्द सीमित किन्तु भाव अधिक रहते हैं जिनको व्यक्त करने के प्रयास में ऐसे अनेक निरर्थक शब्दों का प्रयोग उनकी रचनाओं में हुआ मिलता है जो शास्त्रीय संगीत के पदों में नहीं मिलता। लेकिन अलंकारों तथा मुहावरों के अनावश्यक बोझ से लदी भाषा लोक गीतों से नहीं मिलती। इसी प्रकार लोक गीतों की अपनी कई विशेषताएँ हैं जैसे पुनरावृत्ति, प्रश्नोत्तर प्रणाली, टेक आदि जिससे गीत को कंठस्थ एवं विस्तार करने में सुविधा होती है। भगवान की स्तुति, अर्चना, प्रकृति वर्णन, फाग आदि कुछ ऐसे विषय है जो शास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त होते हैं। लोक संगीत में लोक जीवन की अनन्ताओं के दर्शन होते हैं। लोक संगीत में जुगलबन्दी भी रहती है तथा गायन को चरमोत्कर्ष करने का अपना एक विशेष ढ़ंग रहता है। शास्त्रीय संगीत में भी जुगलबन्दी होती है किन्तु मुख्यतः वह व्यक्ति प्रधान ही है।

उपरोक्त से स्पष्ट है कि शास्त्रीय संगीत में कला पक्ष तथा लोक–संगीत में भाव पक्ष की प्रधानता रहती है। लोक संगीत के अधिक लोकप्रिय होने का सम्भवतः यही प्रधान कारण हो सकता है। नियमों की परिधि में बँधकर रंजकता प्रदान करने की सार्म्थय कठोर साधना के बाद ही गायक को प्राप्त होती है इसलिए शास्त्रीय संगीत सर्व गेय नहीं है। इसमें कलाकार अधिकतर रूढिवादी होते हैं जो किसी प्रकार का परिर्वतन उचित नहीं समझते। किन्तु लोक संगीत का हृदय इतना विशाल है कि वह किसी भी सरल एवं सुमधुर ध्वनि को आत्मसात करने से पीछे नहीं रहता है।

लोक कला में हमको अपने उस सांस्कृतिक वैभव को देखने का अवसर मिलता है। जिसने हमारे देश को एकता के सूत्र में बाँधा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पाण्डे, डॉ0 बद्रीदत्त, कुमाऊँ का इतिहास।
2. तिवारी, डॉ0 ज्योति, कुमाउँनी लोक–गीत तथा संगीत शास्त्रीय परिवेश।
3. गर्ग, लक्ष्मी नारायण'बसंत', संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस।
4. नौटियाल, डॉ0 शिवानन्द, उत्तराखण्ड की लोकगाथाएँ।
5. पेटशाली, जुगल किशोर, उत्तरॉचल के लोक वाद्य।
6. गर्ग, श्री लक्ष्मीनारायण, *निबन्ध संगीत*, संगीत कार्यालय, हाथरस।
7. चक्रवर्ती, सुमिता, लोक संगीत में प्रयुक्त वाद्य यंत्र, ।
8. अधिकारी, पूरन सिंह, 2006 मौखिक परम्पराओं में प्रतिबिम्बित सामाजिक व आर्थिक जीवनः एक एतिहासिक अध्ययन, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी।

❖